ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-1* February-2017
Innovation The Research Concept

किरातार्जुनीयम् में अर्थान्तरन्यास अलंकार का सौन्दर्य

ऋचा मुक्ता
असि0 प्रोफेसर,
संस्कृत विभाग,
ए0पी0सेन मेमोरियल गर्ल्स कॉलेज, लखनऊ

सारांश

अनूठी उपमाओं एवं सुललित पद विन्यास द्वारा काव्य सरिता को प्रवाहित करने वाले महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य में एक श्रेष्ठ महाकाव्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। अपनी एकमात्र रचना 'किरातार्जुनीयम्' के कारण यह संस्कृत साहित्याकाश में उज्जवल नक्षत्र की भाँति विद्यमान है। महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण इनके काव्य में चरितार्थ होते हैं। इनकी यही विशेषता जिज्ञासुओं को अपनी ओर आकृष्ट करती है।[1] 'किरातार्जुनीयम्' में सर्वशास्त्रों का परिनिष्ठित ज्ञान निहित है। अपने महाकाव्य में तो इन्होने अपने इस अगाध ज्ञान भण्डार को मानों उड़ेल कर रख दिया है। इनका महाकाव्य वास्तव में एक महाकवि द्वारा चित्रित लोक जीवन का सर्वांगीण चित्र उपस्थित करता है। यदि काव्य जीवन की समीक्षा है, तो यह महाकाव्य मनुष्य जीवन का समग्र जीवन प्रस्तुत करने के कारण महान् है।

मुख्य शब्द : अलंकार, अर्थान्तरन्यास, सौन्दर्य

प्रस्तावना

साहित्य के अन्तर्गत अलंकारो का महत्वपूर्ण स्थान है। काव्यगत सौन्दर्य अलंकारों पर ही निर्भर है उसके अभाव में काव्य सुशोभित नही हो सकता। महाकवि भारवि संस्कृत साहित्य में अलंकृत काव्यशैली के प्रवर्तक हैं। अप्रस्तुत विधान करते हुए उन्होने अलंकारों की सुन्दर योजना की है। उनके काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही उपलब्ध होते हैं।[2] भारवि के स्वभाव और विश्वानुमति की अभिव्यक्ति की दृष्टि से उनके अर्थान्तरन्यास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। अर्थान्तरन्यास अलंकार दो प्रकार का होता है।

1. सामान्य विशेष भाव मूलक
2. कार्य–कारण भाव मूलक।

समर्थन की भावना इन दोनों ही प्रकारों के मूल में समान रूप से विद्यमान रहती है। यह समर्थन भी दो ढंग से हो सकता है।

1. साधर्म्य से
2. वैधर्म्य से।

भारवि के काव्य में इन सभी प्रकार के अर्थान्तरन्यास के उदाहरण मिलते है। किरातार्जुनीयम् के प्रारम्भिक श्लोक में 'श्रियःकुरूणामधिपस्य पालनी', में श्री शब्द तथा प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में लक्ष्मी शब्द का विन्यास निश्चित रूप से भारवि के किसी विशिष्ट मन्तव्य की ओर संकेत करता है। यही नही, महाकाव्य के सम्पूर्ण अर्थान्तरन्यास विशिष्ट श्लोकों को इस श्री साधना का अविच्छिन्न प्रवाह एक निरन्तर चलने वाला कथानक भी मिलता है। यदि अर्थगौरवप्रिय भारवि ने अपनी सर्वात्तम प्रिय वस्तु को सर्वोन्तम साधन अर्थान्तरन्यास के माध्यम से सम्पूर्ण महाकाव्य में जारी रखा तो कोई आश्चर्य की बात नही है। प्रथम सर्ग में ''युधिष्ठिर के द्वारा नियुक्त वनेचर पाण्डवों को प्रणाम करने के पश्चात शत्रु दुर्योधन द्वारा जीती हुई पृथिवी का सम्पूर्ण वत्तान्त सुनाने का निश्चय किया ऐसा करने से उसका मन किंचित मात्र भी मलिन नही हुआ। सत्य ही है हितैषी जन ऐसी बात नही कहना चाहते जो मीठी होते हुए भी असत्य हो''। यहाँ पर राजा से शत्रु द्वारा विजित पृथिवी का निवेदन करने में वनेचर के मन का व्यथित न होना विशेष बात है तथा उसका ''न हि प्रियं प्रवक्तुमिच्छन्ति मृषा हितैषिणः'' इस सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण सामान्य से विशेष का समर्थन अर्थान्तरन्यास अलंकार है।[3]

क्रिसासु युक्तैर्नृप! चारचक्षुषो न वञचनीयाः प्रभवोऽनुजीविभि ।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः ।।

'' हे महाराज! गुप्तचरों के द्वारा ही सब कुछ ज्ञान प्राप्त करने वाले स्वामिजन कभी भी अपने उन सेवकों के द्वारा वंचित नही किये जाने चाहिए जो

कि नाना प्रकार के कार्यो को सम्पन्न करने में नियुक्त किये गये हैं। अतः मैं जो कुछ भी भला बुरा कहूँ उसे आप क्षमा कर दीजिएगा क्योंकि ऐसे वचन तो प्रायः दुर्लभ ही हैं जो हितकारी भी हों और मनोहर भी।'' यहाँ पर ''प्रिय अथवा अप्रिय बात का सहन करना'' कार्य है तथा इसका हित मनोहारि च दुर्लभ वचः'' इस कारण रूप कथन से समर्थन होने के कारण से कार्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं हितान्नः यः
संश्रृणुतेस किं प्रभुः।
सदाऽनुकूलेषु हि कुर्वते रतिं नृपेष्वमात्येषु च सर्वसंपदः।।[5]

यहाँ पर ''करने योग्य प्रतिकार शीघ्र कीजिए'' इस विशेष कथन का परप्रणीतानि वचां चिन्वतां प्रवृतिसाराः खलु मादृशां गिरः'' इस सामान्य कथन से समर्थन होने के कारण सामान्य का विशेष से समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

द्वितीय सर्ग में दुर्योधन के वृन्तान्त को सुनने के पश्चात् द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध करने की सम्मति दी भीम भी द्रौपदी के मत का ही समर्थन करते हुए कहते हैं–

इयमिष्टगुणाय रोचतां रूचिरार्था भवतेऽपि भारति।
ननु वक्तृविशेषनिः स्पृहा गुणगृहया वचने विपश्चितः।।[6]

यहाँ पर 'द्रौपदी की सारगर्भित वाणी आपको भी अच्छी लगे' यह विशेष है तथा ''विह्ज्जन वाक्य के गुणों पर ध्यान देते हैं उसके वक्ता पर नहीं'' सामान्य है। सामान्य से विशेष, कारण से कार्य का साधर्म्य से समर्थन होने के कारण सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

दुर्योधन के कुटिल आचरण को सुनने के पश्चात् द्रौपदी ने युधिष्ठिर को युद्ध करने की सम्मति दी तब भीम ने भी द्रौपदी के कथन का प्रबल समर्थन किया इन दोनों के उत्तेजना पूर्ण वाक्यों को सुनकर युधिष्ठिर ने धैर्य–पूर्वक कहना आरम्भ किया–

सहसा विदधीत न–क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणते हि विमृश्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः।।[7]

अर्थात् बिना सोचे–समझे अचानक कोई कार्य नहीं करना चाहिए। अविवेक बड़ी–बड़ी आपत्तियों का कारण होता है। गुण की लोभी सम्पत्तियाँ सोच–विचार कर कार्य करने वाले व्यक्ति का स्वयमेव वरण कर लेती है।

यहाँ पर ''सहसा विधान का अभाव अर्थात् विमृश्यकारित्व रूप'' कारण का सम्पत्ति वरण रूप' कार्य से साधर्म्य से समर्थन हुआ है। अतः यहाँ पर साधर्म्यमूलक कार्य कारण रूप अर्थान्तरन्यास है। इसी प्रकार यही ''सहसा विधान का अभाव'' रूप कारण से जब 'अविवेक (बिना सोचे विचारे कार्य करना) बड़ी आपत्तियों का स्थान होता है'' इस कार्य का वैधर्म्य से समर्थन है तब वैधर्म्य मूलक कार्य कारण रूप अर्थान्तरन्यास हो जाता है। इस प्रकार यह श्लोक दोनों का ही उदाहरण है।

तृतीय सर्ग में पाण्डवों की मंगलकामना से महर्षि व्यास जी वन में युधिष्ठिर के पास गये। वहाँ वे उन लोगों के प्रति अपने पक्षपात का कारण बतलाते हुए कहते है–

तथाऽपि निछनं नृप। तावकीनैः प्रहवीकृतं में हृदयं गुणौधैः।
वीतस्पृहाणामपि मुक्तिभाजां भवन्ति भव्येषु हि पक्षपाताः।।[8]

यघपि हमें (कौरवों–पाण्डवों) दोनों को समान दृष्टि से देखना चाहिए तो भी हे राजन आपकी गुणराशि से आकृष्ट होकर मेरा हृदय आपके वश में हो गया है। कामना रहित, मुक्ति के इच्छुक महात्माओं का भी सज्जनों के प्रति पक्षपात हो ही जाता है। यहाँ पर ''युधिष्ठिर के गुणों से व्यास का हृदय उनकी ओर आकृष्ट हो गया'' यह विशेष (कार्य) बात है जिसका स्पृहारहित, ममुक्षु महात्माओं का भी सज्जनों के प्रति पक्षपात है'' इस (कारण के) सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने के कारण यहाँ पर (कारण) सामान्य से (कार्य) विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

इसी प्रकार व्यास जी के आदेशानुसार अर्जुन पाशुपतास्त्र को प्राप्त करने हेतु जाने को उद्यत होते हैं। उस समय द्रौपदी उनसे कहती है–

मा गाश्चिरायैकः प्रमादं वसन्नसम्बाधशिवेऽपि देशे।
मात्सर्यरागोपहतात्मनां हि स्खलन्ति साधुष्वपि मानसानि।।[9]

एकान्त और विघ्न बाधा शून्य स्थान में आधिक दिन तक अकेले निवास करते हुए भी आप असावधानी न कीजिएगा क्योंकि रागद्वेष से युक्त व्यक्तियों के चित्त महात्माओं के विषय में भी विकृत हो जाते हैं। यहाँ पर ''बाधा रहित तथा मंगलकारी स्थान में निवास करते हुए भी प्रमाद के परित्याग का विधान'' कार्य है जिसका ''राग द्वेष मुक्त व्यक्तियों का भी महात्माओं के विषय में विकृत हो जाना'' इस कारण का वैधर्म्य से समर्थन होने के कारण यहाँ पर कारण से कार्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

चतुर्थ सर्ग में इन्द्रकील पर्वत जाते समय अर्जुन ने मार्ग में प्रकृति की मनोहारिणी छटा का अवलोकन किया। एक स्थान पर उन्होंने जलाशय देखा जिसमें कमल और धान के पौधें साथ ही साथ लगे थे। इसके कारण उसमें अद्वितीय सौन्दर्य उपस्थित हो गया था इस अप्रतिम रमणीयता को देखकर अर्जुन को अत्याधिक सन्तोष हुआ। कौन ऐसा व्यक्ति होगा जो दुष्प्राप्य तथा अनुरूप समागम से उत्पन्न उत्कृष्ट सम्पत्ति का स्वागत न करें।[10] यहां पर ''अर्जुन का कमल और धान के संयोग से उत्पन्न सौन्दर्य को देखकर सन्तुष्ट होना'' एक विशेष बात है जिसका 'कौन व्यक्ति अनुरूप समागम से उत्पन्न उत्कृष्ट शोभा का स्वागत नही करता'' इस सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने के कारण सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

इसी प्रकार शरद ऋतु ? वर्णन में हिमालय वर्णन के प्रसंग में गंगा वर्णन आदि अनेक स्थलों पर अर्थान्तरन्यास का सौन्दर्य प्रतीत होता है। षष्ठ सर्ग में कठोर तपस्या के कारण अर्जुन को विभिन्न प्रकार के चमत्कार लक्षित होने लगे। तप के प्रभाव के कारण अर्जुन के समीप शीतल, मंद तथा सुगन्धित वायु प्रवाहित होती थी जिससे ग्रीष्मकालीन सूर्य की प्रचण्ड किरणें उनको किसी प्रकार का कष्ट नही देती थी। पुष्प चयन कटते समय बड़े–बड़े वृक्ष स्वंय अवनत हो जाते थे। अर्जुन के शयन स्थान की भूमि स्वंय तृणों से आच्छादित हो जाती थी तथा मेघरहित आकाश जल बिन्दुओं की वर्षा करके

धूलि का शमन कर देता था।'' इस प्रकार महती फलसिद्धि के सूचक इन निमित्त कुसुम रूप लक्षणों को देखकर भी अर्जुन के मन में लेशमात्र भी विस्मय नही हुआ क्योंकि जितेन्द्रिय पुरूषों के अनुभाव गुण उन्हें धैर्य से च्युत नही करते है।[11] यहां पर 'अर्जुन कार्यसिद्धि के निमित्त भूत लक्षणों को देखकर भी आश्चर्यचकित नही हुआ'' यह विशेष बात है जिसका ''जितेन्द्रिय लोगों के अनुभाव गुण उनको धैर्यच्युत नही करते है'' इस सामान्य कथन से साधर्म्य होने के कारण यहां पर सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

इन्द्र तथा अप्सराओं के वर्णन के प्रसंग में, अर्जुन की तपस्या का वर्णन, अप्सराओं द्वारा अर्जुन को आकर्षित करने के प्रयास के प्रसंग में अर्जुन तथा किरात सेना एवं शूकर के साथ युद्ध के वर्णन के प्रसंग में भी अर्थान्तरन्यास का सौन्दर्य दिखाई देता है।

अर्जुन शूकर के शरीर में बिद्ध बाण को लेने के लिए दौड़ पड़े। इसी का वर्णन करते हुए कवि कहता है ''लक्ष्य भेद में सफल होने के कारण उस बाण की तीक्ष्णता स्पष्ट हो चुकी थी। अतएव अर्जुन बहुत से बाणों के पास होने पर भी उस बाण के लेने के लिए दौड़ पड़े। कारण यह है कि कृतज्ञ पुरूषों के लिए कृतकर्मा पुरूष जितना प्रिय होता है उतना भविष्य में उपकार करने वाला व्यक्ति प्रिय नही हो सकता है।[12]

यहां पर ''अनेकों बाणों के होने पर भी अर्जुन शूकर को भेदन करने वाले बाण को लेने के लिए दौड़ पड़े'' इस विशेष बात का 'कृतज्ञ व्यक्ति को भविष्य में उपकार करने वाला व्यक्ति उतना प्रिय नही होता है जितना कि कृतकर्मा'' इस सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने के कारण यहां सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है। इसी प्रकार चतुर्दश सर्ग में कहा गया है:–

सखा स युक्तः कथितःकथं त्वया यदृच्छयाऽसूयति यस्तपस्यते।
गुणार्जनोच्छ्रायविरूद्धबुद्धयः प्रकृत्यामित्रा हि सतामसाधवः।।[13]

तुमने जो यह कहा वे किरातराज आपके लिए उपयुक्त मित्र है, यह भी ठीक नही क्योंकि जो तपस्वी पर मनमाना दोषारोपण करता है वह युक्त सखा कैसे हो सकता है? गुणों के अर्जन के उत्कर्ष के विरूद्ध बुद्धि वाले असज्जन लोग स्वभाव से ही सज्जनों के शत्रु होते है। यहां पर ''किरातनाथ तपस्या करते हुए व्यक्ति पर मनमाना दोषारोपण करते है अतः वे उपयुक्त मित्र नही हो सकते है'' इस विशेष बात का ''गुणार्जन के उत्कर्ष के विरूद्ध बुद्धिवाले लोग स्वभाव से ही सज्जनों के शत्रु होते है।'' इस सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने से सामान्य से विशेष का समर्थन का रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

वयं क्व वर्णाश्रमरक्षणोचिताः क्व जातिहीना मृगजीवितच्छिदः।
सहापकृष्टैर्महतां न संगतं भवन्ति गोमायुसखा न दन्तिनः।।[14]

वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करने के योग्य कहाँ हम राजा लोग! और कहां पशुओं की हिंसा करने वाला निकृष्ट जाति का तुम्हारा स्वामी! नीचों के साथ उच्च व्यक्तियों की मित्रता सम्भव नहीं। क्योंकि हाथी श्रृंगालो के साथ मैत्री नही किया करते है।' यहां पर '' निम्न वर्ग के व्यक्तियों के साथ उच्च वर्ग के व्यक्तियों की मित्रता नही होती है'' इस सामान्य कथन का ''हाथी श्रृंगालों के साथ मित्रता नही किया करते है इस विशेष बात होने से, यहां विशेष से सामान्य का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

प्रसेदिवासं न तमाप कोपःकुतः परस्मिन्पुरूषे विकारः।
आकारवैषम्यमिदं च भेजे दुर्लचिहना महतां हि वृत्तिः।।[15]

अर्जुन से प्रसन्न भगवान् शंकर को क्रोध नही आया। परम पुरूष में विकार ही कहां? केवल आकार मात्र में यह विषमता थी। महान् व्यक्तियों की चेष्टा किसी चिहन विशेष से व्यक्त नही हुआ करती है। इस उदाहरण में दो अर्थान्तरन्यास प्रयुक्त है। प्रथम पंक्ति में ''शंकर को क्रोध न आना'' विशेष है जिसका समर्थन श्रेष्ठ पुरूष में विकार कहां? इस सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने के कारण सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है। इसी श्लोक की द्वितीय पंक्ति बिना क्रोध के भी आकार में विषमता का होना'' विशेष है जिसका ''महान पुरूषों की चित्तवृत्ति चिहन द्वारा परिलक्षित नही होती'' इस सामान्य कथन द्वारा साधर्म्य से समर्थन होने से सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास है।

तपसा तथा न मुदमस्य ययौ भगवान्यथा विपुलसत्वतया।
गुणसंहतेः समातिरिक्तमहो निजमेव सच्वमुपकारि सताम्।।[16]

भगवान् शंकर जितना अर्जुन के धैर्य और साहस से प्रसन्न हुए उतना तपश्चर्या से नही। क्योंकि सत्पुरूषों का पराक्रम (तप सेवादि) गुणों की अपेक्षा अधिक उपकारक होता है। यहां पर ''भगवान् शंकर अर्जुन के तप से उतना प्रसन्न नही हुए जितना पराक्रम से' इस विशेष कथन का ''सज्जनों का पराक्रम तपसेवादि गुणों की अपेक्षा अधिक गुणकारी होता है'' इस सामान्य कथन से साधर्म्य से समर्थन होने के कारण यहां सामान्य से विशेष का समर्थन रूप अर्थान्तरन्यास अलंकार है।

उद्देश्य

अर्थान्तरन्यास अलंकार के सौन्दर्य की विवेचना इस शोध पत्र का विषय है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि भारवि को कार्यकारणभावमूलक अर्थान्तरन्यास की अपेक्षा सामान्य विशेषभावमूलक अर्थान्तरन्यास अधिक प्रिय था। किरातार्जुनीयम् के 122 अर्थान्तरन्यासों में से केवल 29 ही कार्यकारणभावमूलक है, अन्य 93 सामान्य विशेषभाव मूलक। इन सामान्य विशेषभाव मूलक अर्थान्तरन्यासों में भी अधिकांश स्थलों में सामान्य से विशेष का समर्थन किया गया है। तर्क संगत भी यही अधिक है।[17] समर्थन के द्विविध प्रकारों में से अधिकतर साधर्म्य से ही समर्थन है। समर्थन के उद्देश्य से प्रयुक्त किए गये अलंकार में किसी भी प्रकार की वक्रता की स्थिति समर्थन के बल को अवश्य ही क्षीण करती है। अतः यदि भारति ने वैधर्म्य के

अपेक्षा साधर्म्य को ही प्रधानता दी है तो कोई आश्चर्य नही।

भारवि अर्थान्तरन्यास के प्रयोग में पूर्णरूपेण पटु थे और सम्भवतः इनकी यही सफलता किरातार्जुनीय को अर्थगाम्भीर्ययुक्त बनाती हुई भारवि के अर्थगौरव की ख्याति का कारण बनी। भारवि ने अपने महाकाव्य में अन्य अलंकारों की अपेक्षा अर्थान्तरन्यास अलंकार का सर्वाधिक प्रयोग किया है। भारवि के अर्थान्तरन्यास उनकी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के विषय में बनी हुई धारणाओं और मान्यताओं को लालित्य, अर्थगाम्भीर्य एवं सूक्ष्म चिन्तन की प्रभविष्णुता के साथ प्रकट करते हैं।

भारवि ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि आकर्षण की शक्ति वस्तु में नही प्रेम में रहती है। प्रसाधनों में रम्यता के आधान का हेतु भी प्रिय समागम ही होता है। रम्य वस्तुएं प्रत्येक अवस्था में सुन्दर ही प्रतीत होती है। उनमें यदि विकृति भी हो तो स्वाभाविक सौन्दर्य के बल पर ही वे मन को आकृष्ट कर लेती है।[19] भारवि के मानव की चित्रवृत्तियों के विश्लेषण से उनकी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का ज्ञान होता है। राजनीति उनका विषय है पर गौणवृत्त्या अन्य विषयों में भी उनके विश्वास का आभास हो जाता है। भारवि के अलंकार बिना किसी पृथक प्रयास रसपरिषोषक के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। एक ओर वहाँ इनसे चाख्त्व का उत्कर्ष हुआ तो दूसरी ओर विषय में स्पष्टया भी आई है और वास्तव में इसी में अलंकारों की संज्ञा की सार्थकता भी है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *संस्कृत साहित्य का इतिहास*
2. *अग्निपुराण 343/32*
3. *किरातार्जुनीयम् 1/2*
4. *किरातार्जुनीयम् 1/4*
5. *किरातार्जुनीयम् 1/5*
6. *किरातार्जुनीयम् 2/5*
7. *किरातार्जुनीयम् 2/30*
8. *किरातार्जुनीयम् 3/12*
9. *किरातार्जुनीयम् 3/53*
10. *किरातार्जुनीयम् 4/4*
11. *किरातार्जुनीयम् 6/2*
12. *किरातार्जुनीयम् 13/32*
13. *किरातार्जुनीयम् 14/21*
14. *किरातार्जुनीयम् 14/22*
15. *किरातार्जुनीयम् 14/23*
16. *किरातार्जुनीयम् 18/14*
17. *भारविकाव्य में अर्थान्तरन्यास – डा0 उमेश प्रसाद रस्तोगी– पु0 62*
18. *किरातार्जुनीयम् 9/35*
19. *किरातार्जुनीयम् 7/5*